International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 7 Issue 1 || January. 2018 || PP. 105-108

पर्यावरण संरक्षण का वैज्ञानिक दृष्टिकोण जैन पुराणो के विशेष संदर्भ मे

डॉ. श्रीफूल मीना
व्याख्याता इतिहास
राजकीय कला महाविद्यालय
दौसा राजस्थान

सुशीला सांवरिया
व्याख्याता, इतिहास
राजकीय कला महाविद्यालय
दौसा राजस्थान

यह सर्वविदित है कि पर्यावरण का उचित प्रबन्धन मानव जीवन को खुशहाल बनाता है। मानवीय सभ्यता का इतिहास रहा है कि पर्यावरण चेतना के साथ–साथ उसका संरक्षण भी किया जाना आवश्यक है।मानवचित्त की प्रवृत्ति सदैव सुख प्राप्ति की रही है। लेकिन प्रश्न उठता है कि वास्तविक सुख किसे कहा जाये और उसका अर्जन कैसे हो? इस प्रश्न का उत्तर मानव की विवेकीय शक्ति से प्राप्त होता है। मानव की विवेकीय शक्ति वो शक्ति है जिकसा सदुपयोग कर सच्चे सुख की प्राप्ति की जा सकती है। इस सुख की प्राप्ति के के लिए उचित साधनों की अनिवार्यता आवश्यक है। लेकिन यह चिन्ता का विषय है कि मानव भौतिक लालसाओं में उलझा हुआ है। वह अपने सद्विवेक को विस्मृत कर मन और इन्द्रियों के प्रभावश बाह्य विषयों–विकारों में सुख खोजने का प्रयास करता है। पर हाथ क्या लगता है – असन्तोष, अशान्ति और निराशा! ये ही वे कारण हैं जो पर्यावरण को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से बहुतायत प्रभावित करते हैं। क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टि से मानव जीवन प्रकृति से जुड़ा हुआ है। यही विज्ञान प्रकृति व पर्यावरण के सम्बन्ध को परिभाषित करता है। अतःवैज्ञानिक दृष्टि से यहएक–दूसरे से सम्बद्ध हैं, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष।

विज्ञान ने यह सिद्ध किया है कि पर्यावरण व प्रकृति एक–दूसरे के पूरक हैं। वर्तमान विश्व में यह विचारणीय मुद्दा है कि पर्यावरण और प्रकृति पर गहराते संकट का समाधान कैसे हो? निरन्तर बढ़ रही हिंसा, वन्य तथा अन्य पशुओं की बड़ी तादाद में हो रही हत्या और तामसिक विचारधारा पर अंकुश कैसे लगाया जाये? इस संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले पुराणों के नैतिक मूल्यों – रात्रि में भोजन न करना, अभक्ष्य पदार्थ, जल छानकर पीना, पादप भी प्राणधारी, तीर्थंकरों के प्रतीक चिह्नों में पशुओं की महत्ता, मूर्तिकला में प्रदर्शित पर्यावरण सुरक्षा, आहार और अराजकता, व्रत उपवास, जीवन रक्षा, सहअस्तित्व, संकीर्ण चिन्तन और घातक नीतियां, मांसाहार तथा शाकाहार, आहार की सात्विकता और शुद्धता आदि भावना के ओत–प्रोत सिद्धान्तों की अनदेखी की जा रही है। पांच महाव्रत, पांच समितियां, पांच इन्द्रिय दमन, वस्त्र परित्याग, केश लोचन करना, छह आवश्यकों में कभी बाधा नहीं होना, स्नान नहीं करना, पृथ्वी पर सोना, दांतुन नहीं करना, खड़े होकर भोजन करना और दिन में एक बार आहार लेना, इन्हें अट्ठाईस मूल गुण कहा जाता है। इसके अतिरिक्त चौरासी लाख उत्तरगुण भी है। जिनमें मन, वचन, कार्य की पवित्रता, स्थूल हिंसा का त्याग, शुद्ध जल से स्नान करना, भी शामिल है।[1] इन सभी गुणों का पालन करने पर उपर्युक्त नैतिक सिद्धान्तों को जीवन में अपनाया जा सकता है। बढ़ती तामसिक प्रवृति पर्यावरण प्रदूषण का मूल कारण है और उसके भी मूल में है तामसिक आहार अर्थात् मांसाहार।

जैन पुराणों की पर्यावरण सम्बन्धी वैज्ञानिकता और संरक्षण

जैन पुराणों और धर्म की भांति ही अन्य पुराणों व धर्मों में भी पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबन्धन के सूत्र मिलते हैं। प्रकृति प्रदत्त व्यवस्था के अनुसार पर्यावरणीय घटक सन्तुलित अवस्था में रहते हैं। पर मानव का हस्तक्षेप उन्हें असन्तुलित करता है। 'जीवो जीवस्य भोजनम्' और 'मत्स्य न्याय' का अभिधार्थ इसके सन्तुलन के अभिधेयार्थ को प्रकट करता है। पर्यावरण संरक्षण के मूल सूत्र है पुराणों वर्णित 'अहिंसा परमोधर्मः', जो भारतीय संस्कृति का और विशेषतः श्रमण संस्कृति का मूल मंत्र है। जहां इस पर गहराई से चिन्तन और अनुपालन किया गया है जीवन रक्षा और सर्वमित्र भाव पर ध्यान दिया जाता हैं अकारण का सकारण जीवघात ही हिंसा नहीं, अपितु स्थावर, जंगात्मक सभी जीवों के प्रति द्रोह या पीड़ा बुद्धि भी हिंसा हैं दूसरे प्राणियों को पीड़ा उत्पन्न करने वाला वचन प्रयत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिए क्योंकि ऐसा वचन हिंसा का कारण है और हिंसा संसार का कारण है।[2] प्राणिमात्र, जिसमें वन, वृक्षादि भी शामिल हैं के प्रति शारीरिक, मानसिक और वाचिक दुख देना भी अपेक्षित नहीं है। जैन धर्म व पुराणों में षट्काय जीवों की इस हिंसा को बाह्य तथा रागादि हिंसा को अन्तरंग कहा गया है। यह ही दो भेद पर्यावरण के भी किए गए हैं अर्थात् पूर्ण पर्यावरण सन्तुलन और उसका

संरक्षण तभी संभव है जब इन दोनों स्थितियों पर ध्यान केन्द्रित हो। बाह्य और अन्तरंग दोनों में ही अप्रमादतः यत्नाचार करने से साधना अहिंसक ही होगी और वह पर्यावरण संरक्षण में सहायक होगी।[3]

जैन धर्म में पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबन्धन का पालन कठोरता से किया गया तभी तो पर्यावरण चेतना को जन जीवन में धर्म से जोड़ा गया था। यही कारण है कि नन्दी, सिंह, गर्दभ, उलूक, चूहा, गरूड़, सर्प, हंस इत्यादि देवता वाहन के रूप में और वट, पीपल, नीम, तुलसी, बबूल, अशोक आदि वृक्ष देव रूप में पूज्य रहे हैं। वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का सम्बन्ध अरण्य संस्कृति से है। अरण्यकों की रचना के स्थल भी अरण्य हैं। आदिदेव ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त सभी ने तपश्चर्या हेतु इन्हीं अरण्यों या वनों से गए और ध्यानस्थ होकर ज्ञान प्राप्त किया।[4] इस प्रकार वन में तपस्या करने की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के साथ उसका वैज्ञानिक और पर्यावरणीय महत्व भी सम्मिलित है। वृक्ष दिन में प्राणवायु का उत्सर्जन करते हैं, जो मानव के लिए उपयोगी है क्योंकि इनसे शुद्ध वायु का संचरण होता है । कल्पवृक्ष की अवधारणा यदृच्छा लाभ की है। जैन धर्म में यह वृक्ष मात्र के लिए भी आया है जो वन संस्कृति को प्रस्तुत करता है।[5] पार्श्वनाथ की तपस्या का मूल स्थान अश्ववन था। महावीर स्वामी ने स्वयं सत्य की खोज के लिए वन का आश्रय लिया था और वे मुनष्य पशु पक्षी, जीव जन्तु समग्र प्रकृति से जुड़ गए और उन्होंने पर्यावरण प्रबन्धन, संतुलन एवं संरक्षण के अनेक सूत्र प्रस्तुत किए।[6]

जैन पुराणों व धर्म की नैतिक मान्यताएं व आदर्श मूल्य प्राकृतिक पर्यावरण के साथ–साथ सामाजिक प्रदूषण को भी कम करने के मार्ग बतलाते हैं। वस्तुतः पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबन्धन एक मानव धर्म है जो आज के आतंकवाद, उग्रवाद, विविध तनाव आदि रोग तथा अनेक सामाजिक कुरीतियों के लिए रामबाण औषधि है। अतः मानव अस्तित्व के लिए पर्यावरण प्रदूषण को कारणों को विनष्ट कर पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबन्धन की आवश्कता है। जैन पुराणों में भी पर्यावरण और उसके संरक्षण के संकेत प्राप्त होते हैं। आचार्य ज्ञानसागर के वीरोदय महाकाव्य में समवशरण की संरचना में पर्यावरणीय दृष्टि स्पष्ट है। जैन संस्कृत पुराणों की समवशरण संरचना भी नैतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती है।

वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो जैन धर्म व पुराणों में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य इत्यादि अणुव्रत एवं पंचमहाव्रत भी आन्तरिक पर्यावरण को स्वस्थ रखने में सहायक है क्योंकि प्रकृति से अतिदोहन प्रवृति पर अंकुश लगाते हैं। श्रावकाचार के रूप में निर्दिष्ट इन अणुव्रतों के अतिरिक्त तीन गुणव्रत (दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत) तथा चार शिक्षाव्रत (सामयिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण तथा अतिथि संविभाग व्रत) भी प्रकृति का प्रबन्धन करने व उसे संतुलित रखने में अपनी भूमिका निभाते हैं।

मूर्त–अमूर्त देव पूजा भी आन्तरिक शान्ति, पवित्रता और शुद्ध भावों को उत्पन्न करती है। यह पूजा जिन अष्ट द्रव्यों से की जाती है – जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवद्य, दीप, धूप, फल आदि प्रकृति के घटक हैं और पर्यावरण के उपादान भी। समस्त जैन अजैन कवियों और लेखकों ने प्राकृतिक संसाधनों के रूप में वायु, जल, वन, वृक्ष, नद्य–नदी, जीव–जन्तु आदि के और अनन्त ऊर्जा के स्रोत के रूप में सूर्य आदि का वर्णन परम्परागत शैली में किया है जो पर्यावरणीय चेतना के रूप में प्रभावी बन पड़ा है। प्रकृति के समस्त घटकों में प्राणों का स्पन्दन है और उनके अस्तित्व में ही मनुष्य का अस्तित्व है। श्रावक–मुनि–आचार्य–चर्या भी पर्यावरण सन्तुलन में सहायक सिद्ध होती है। सीमित जल प्रयोग, शाकाहार, अहिंसा, अपशिष्टरोध, हरे वृक्ष न काटना, मिताहार, विशिष्ट तिथियों पर आहारत्याग, वस्तुओं का आवश्यक और सीमित प्रयोग आदि नियमों के पालन से पर्यावरण प्रबन्धन एवं सरंक्षण होता है।[7]

प्रकृति को सदैव दयालु कहा जाता है लेकिन दया की भी एक सीता निश्चित होती है। इस सीमा का उल्लंघन होने पर प्रकृति प्रतिकार लेती है जैसे अकाल पड़ते हैं, प्रलय होती है, रोग व्याप्त होते हैं, प्राकृतिक आपदायें आती हैं और मानव का अस्तित्व ही संकटापन्न हो जाता है। यह सब विज्ञान से ही तो जुड़ा हुआ है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस संकट से बचने के लिए जैन पुराणों एवं धर्म में उल्लिखित 'अपरिग्रह' का सिद्धान्त लाभकारी है। प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का दोहन तो आवश्यकता की पूर्ति हेतु अनिवार्य है पर दोहन पोषण सहित होना चाहिए, शोषण कदापि नही। आदिपुराण में उल्लिखित है जैन समुदाय मांस का भक्षण नहीं करता क्योंकि मांस बिना जीव हत्या के प्राप्त हो ही नही सकता। भूख मिटाने के लिए मांसाहार की आवश्यकता नहीं इसके लिए तो शाकाहार ही पर्याप्त है।[8] आदिपुराण, हरिवंशपुराण एवं पद्पुराण के अनुसार जैन अनुयायी रात्रि में भोजन नहीं करते। सूर्य के प्रकाश में कीट पतंग दिख जाते हैं पर रात्रि में इस ऊष्मा के अभाव में असंख्य मांसाधारी जीव पनप जाते हैं और भोजन के साथ अनायास ही खा लिये जाते हैं। जिनमें से अनेक विषधारी होते हैं और शारीरिक कष्ट दे सकते हैं।[9]

कहा जाता है कि जल ही जीवन है। विज्ञान में जल का सूत्र H_2O (ऑक्सीजन व हाइड्रोजन) है और इस सूत्र से ही जल का निर्माण होता है। जैन पुराणों में ऐसी मान्यता है कि साधारण जल की एक बूंद में भी 36450 अति सूक्ष्म जीव होते हैं। अतः मोटे दुहरे कपड़े से छानकर जल पीने को कहा गया है। इसकी मर्यादा बढ़ाने के लिए लौंग, इलायची जल में डालने अथवा जल उबालने का निर्देश है।[10] पतित पावनी गंगा भी इतनी प्रदूषित हो गई है कि 100 सी.सी. जल में 4000 कोलीफोर्म बैक्टीरिया मिलते हैं। जैन पुराण एवं धर्म तो प्रारम्भ से ही पेड़ पौधों में जीवन होने का दावा करते हैं। सत्यता यह है कि जीवन है ही जीव–वन। इसलिए हरे वृक्ष का नाश न करना जैन धर्म निर्देशित करता है। यदि हम गौर करें तो पाते है कि जैन अनुयायियों के सातों ही मुख्य तीर्थ गिरनार, सम्मेद शिखर, पावापुर, चम्पापुर, राजगृह, आबू तथा पालिताना वनों के शान्त एवं सुरम्य स्थलों में पर्वताचंलों में स्थित है। यह प्रकृति प्रेम व प्रबन्धन का परिचायक है। वन वायु, नगरीय वायु से 20 गुणा अधिक शुद्ध होती है। यह तथ्य जैन तीर्थंकर जानते थे कि हरे वृक्ष ही पृथ्वी के सबसे

विशालतम प्राणवायु ऑक्सीजन उत्पादन के संयंत्र हैं और साथ ही विषैली गैस कार्बन–डाई–आक्सडाई को उदरस्थ करने वाले नीलकण्ठ रूपी वृक्ष ही कारखाने हैं। शुद्ध पर्यावरण हेतु वनों की अनिवार्यता स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। विकास निमित्त औद्योगिकीकरण, नगरीकरण आदि से जो पर्यावरण में हलाहल घोलने वाली गैसें उत्पन्न होती है उनको खत्म करने वाले हरे वन ही है।[11]

शुद्ध पर्यावरण के लिए आवश्यक है कि मानव का मन शुद्ध रहे और यह अति आवश्यक है। व्यक्ति जैसा खाता है वैसा ही उसका मन, चिन्तन, वचन, और व्यवहार होता है। अतः प्राकृतिक सन्तुलन सात्विक आचार–विचार और व्यवहार के लिए शाकाहार ही आवश्यक है न कि मांसाहार।[12] भारतीय संस्कृति में आहारचर्या अत्यन्त वैज्ञानिक रही है। यह बात अलग है कि हम उसका महत्व देर से समझते हैं। जैन धर्म में पूर्णिमा, चतुर्दशी, अमावस्या आदि दिनों व्रत उपवास किया जाता है। इसके पीछे भी पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण ही छिपा है। चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अमावस्या – ये चारों दिन मानसिक दृष्टि से बहुत खतरनाक होते हैं। हमारे शरीर में 80 प्रतिशत जलीय भाग है। जैसे चन्द्रमा समुद्र के जल को प्रभावित करता है। उसमें ज्वार भाटा आता है। वैसे ही जलीय भाग की अधिकता के कारण चन्द्रमा हमारे मन को भी प्रभावित करता है। जैन पुराणों के अनुसार चन्द्रमा का सम्बन्ध मन से और मन का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। चन्द्रमा समुद्र के जल को भी प्रभावित करता है और हमारे शरीर में होने वाले जलीय अंश और मन को भी प्रभावित करता है।

मानव में क्रूरता के साथ अपरिमित करूणा की भी सम्भावनायें हैं। वह विकृत होकर विश्व का सबसे अधिक बर्बर और नृशंस प्राणी हो सकता है और सुसंस्कृत होकर करूणा की प्रतिमूर्ति भी बन सकता है। सहअस्तित्व की बात समझे बिना मानव के स्वयं का अस्तित्व सुरक्षित नहीं है। यदि मानव अपने अस्तित्व के प्रति सही मायने में जागरूक हो, तो वह दूसरों का शोषण नहीं करेगा। अपने सुख के लिए दूसरों का सुख नहीं छिनेगा। जिससे प्रकृति का सन्तुलन गड़बड़ाये और प्राकृतिक जीवों को कष्ट हो – ऐसे स्वाद, श्रृंगार और मनोरंजन के लिए मानव अन्य प्राणियों का संहार नहीं करेगा। इस चिन्तन का व्यापक विकास होगा कि पृथ्वी पर अन्य भी हैं, सिर्फ मैं और मेरा विषय नहीं है, किन्तु यह सब भी तभी संभव है, जब तामसिकता का अभाव हो और सात्विकता का संचार हो। तामसिकता से मांसाहार की प्रवृत्ति बढ़ती है। किन्तु मांसाहार जीवन की अनिवार्यता तो नहीं है। अतः मांसाहार का निषेध होना चाहिए। तामसिकता मानव विनाश का कारण है। इससे पर्यावरण शुद्धि, धर्मबुद्धि और राष्ट्र के विकास व कल्याण की भावना समाप्त हो जाती है। तामसिकता से मानव मन की दुर्बलता स्पष्ट होती है। जो उसको कर्तव्यों का निर्वाह नहीं करने देती है। अतः तामसिक प्रवृत्ति का परित्याग कर सात्विक प्रवृत्ति को अपनाना चाहिए।[13]

प्रकृति के साथ मानवीय सम्बन्धों की यह सौगात वस्तुतः पर्यावरण चेतना का एक अविभाजय अंग है। आचार्य ज्ञानसागर के संस्कृत महाकाव्य ग्रन्थों में इन सम्बन्धों का प्रचुरता से उल्लेख पाया जाता है। पर्यावरण प्रबन्धन एवं संरक्षण एक तरह से मानवीय धर्म है। पर्यावरण प्रबन्धन एवं संरक्षण हेतु क्रोध, अहंकार एवं इन्द्रियों के विषय पर नियंत्रण महत्वपूर्ण होता है।[14] चेतना, चिन्तन और चेतवानी के सन्दर्भ में हम कह सकते हैं कि चेतावनी – पर्यावरण, चिन्तन – पर्यावरण प्रदूषण और चेतना – पर्यावरण का प्रबन्धन एवं संरक्षण। जैन पुराणों में भोगभूमि के पूर्व के समय दस प्रकार के कल्पवृक्षों का वर्णन आया है। जो पर्यावरण संरक्षण के सजीव उदाहरण हैं।[15] सामाजिक पर्यावरण संरक्षण के लिये आदि देव ऋषभ ने वर्ण परम्परा का सूत्रपात किया – रक्षा के लिए क्षत्रिय वर्ग, व्यापार के लिए वैश्य, विद्या के अध्ययन अध्यापन के लिए ब्राह्मण और स्वास्थ्य व स्वच्छता के लिए शूद्रों का समूह बनाया।[16] भगवान ऋषभदेव पर्यावरण संरक्षण के आदि पुरोधा और महावेता थे। उन्होंने मानव को हिंसा और विपथगामी होने से बचाने के लिए असि, मसि, कृषि विद्या का सूत्रपात किया।[17] यह पर्यावरण प्रबन्धन एवं संरक्षण ही तो था। वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर दिगम्बर जैन मुनि की स्वीकृत जीवनचर्या को पर्यावरण संरक्षित सिद्ध करता हुआ, उसे शुद्धिपरक संयमाचरण मानता है। दिगम्बर मुनि के 28 मूल गुण होते हैं। 28 मूल गुणों को पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में देखें तो अपरिग्रहता को वह वायु के समान स्वीकार करता है। अहिंसा महाव्रत पर्यावरण से दूध और पानी की भांति सह सम्बन्धित होता है। अचौर्य और सत्य महाव्रत अहिंसा के अनुगामी होते हैं। ब्रह्मचर्य परिपालन में वह स्त्रियों की बात स्वप्न में भी याद नहीं करता।[18] भाषा समिति ध्वनि प्रदूषण के निराकरण एवं प्रबन्धन में एक जीवन्त स्वीकृति है। 'प्रतिष्ठापन समिति' वायु प्रदूषण के निराकरण एवं पर्यावरण शुद्धि में सहायक है।[19] पांचों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना भोगवादी प्रवृत्ति पर सीधा प्रहार है। अस्नान साधु के लिये जल अपव्यय को रोकने की प्रक्रिया में व्यवहार्य कर्तव्य है।

शाकाहार हमें उस पर्यावरण की ओर लेकर जाता है जो 'शा' शान्ति का, 'का' कान्ति का, 'हा' सौहार्द का, 'र' रसों या रक्षा का परिचायक है। आचार्य ज्ञानसागर के वीरोदय महाकाव्य के 19वें सर्ग में स्यादवाद और अनेकान्तावाद की अवधारणा को प्रकृति से जोड़ा है। अनेकान्त की पुष्ट अवधारणा पृथ्वी खोदने नदियों के जल को प्रदूषित करने आदि को निषेध करती है।

पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबन्धन का मूलाधार पादप एवं विभिन्न वन्य जीवों के प्रति आत्मीयता का भाव जैन दर्शन एवं पौराणिक कथाओं में निरन्तर विद्यमान रहा है।[20] वृक्षों के प्रति सम्मान भाव के इसी संस्कार से जैन मुक्तककारों ने अध्यात्म और नैतिक भावों मोक्ष, सम्यक्त्व, धर्म, पुण्य आदि को निरन्तर 'तरू' तथा कभी वल्लरी के उपमान से अलंकृत किया है।

वृक्ष समूह और विभिन्न वल्लरियों से आच्छादित वन और उपवन जैन कवियों और पुराणकारों के साथ श्रावकों को भी बड़े प्रिय थे। धार्मिक विधि विधान में अपनी सम्पत्ति व्यय करने में संकोच कर भी लोग बाग बगीचा लगाने में

लाखों रूपये व्यय कर देते थे। इसी प्रकार प्राण वायु को पवनदेव का पद देकर तीर्थंकरों की समवशरण रचनाओं में उसे रूचिकर पर्यावरण बनाने का दायित्व जैन पुराणों और काव्यों को सौंपा गया है।[21]

जैनाचार में अहिंसा की प्रधानता के कारण जैन पुराण में जीव रक्षा की अभिव्यक्ति दो रूपों में हुई है – सिद्धान्तपरक और भावपरक। सिद्धान्तपरक उक्तियों में लगभग सभी कवियों और पुराणकारों ने जीव रक्षा के संकेत दिए हैं। सभी जैन पुराणों में जन हितैषी पर्यावरण में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप वर्जनीय है। इसके लिए संत और जैन कवियों ने मानव को प्रताड़ना भी दी है। विजयदेव सूरि के शील रासा की नायिका राजुल नेमिनाथ वियोग के कारणों में स्वयंकृत पर्यावरण सुरक्षा की अवहेलना की सम्भावना कर दूधिया डाल काटने, बेलि तोड़ने, जलचरों को जल में पकड़ने, मृग को फंदे में फंसाने जैसे कृत्यों को पाप सिद्ध कर प्रकारान्तर से इन कृत्यों का निषेध करती है।

समस्त संसार के पर्यावरणविदों के लिए पर्यावरण प्रबन्धन, संरक्षण, सन्तुलन तथा इसका संवर्द्धन एक चिन्ता का कारण बना हुआ हैं संसार के सभी देशों की राज्य व्यवस्थाएं पर्यावरण संरक्षण हेतु सतत प्रयत्नशील हैं। पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के समाधान जैन सिद्धानतों में समाहित है। कल्पवृक्ष की समाप्ति के बाद आदि पुरूष ऋषभदेव ने सबके कल्याण के लिए पर्यावरण संरक्षण और अहिंसक आहार की नींव पर आधारित नूतन समाज व्यवस्था को जन्म दिया। पर्यावरण प्रबन्धन का उत्तरदायित्व तो केवल मनुष्य का है क्योंकि अन्य जीव तो अनुकूलन करते हैं या अनुकूलन न कर पाने पर नष्ट हो जाते हैं। पशु सृष्टि तो मानव के लिए वरदान है। गाय प्रभृति प्राणी न केवल दुध अपितु मलमूत्रादि के रूप में ईंधन, खाद भी प्रदान करते है। सर्प जैसा विषधारक प्राणी फसल नष्ट करने वाले कीड़ों को खाकर उसकी सुरक्षा करता है तथा केंचुआ जैसा प्राणी भूमि को उर्वरा बनाता है। सारांश यह है कि पर्यावरण प्रबन्धन एवं संरक्षण में प्रत्येक प्राणी का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में योगदान रहता है।

पर्यावरण प्रबन्धन एवं संरक्षण के वैज्ञानिक व सैद्धान्तिक पक्ष को बताने वाले जैन पुराणों ने प्रकृति चित्रण, पर्यावरण शुद्धि एवं वातावरण के सन्तुलन से भर दिया है। इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन जैन जीवन पद्धति का मूलाधार है। जिसने ब्रह्माण्ड में जीवत्व को माना और आत्मा यथा स्वस्थ तथा परस्थ वैश्विक संवाद 'विधिर्नरस्य' की प्रतिष्ठा की। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन धर्म व पुराण पर्यावरण संरक्षण का पक्षधर है। पर्यावरण इसके बावजूद बिगड़ रहा है। यह विडम्बना है। वैश्वीकरण के कारण जहां भौतिक सुख सुविधा में वृद्धि हो रही है, वहीं उसे प्रकृति क साम्राज्य में अनधिकार हस्तक्षेप कर विकृत कर रहे हैं।

सन्दर्भ :

1 जिनसेन, आदिपुराण, पर्व 36, 130–135, श्लोक 114, 116
2 जिनसेन, आदिपुराण, पर्व 39, श्लोक 26
3 सूत्रकृतांग, आचारांगसूत्र, 1/5/2 ; 1/14/1
4 जिनसेन, आदिपुराण, पर्व 1, श्लोक 149–150
5 जिनसेन, हरिवंशपुराण, सर्ग 7, श्लोक 80–91
6 गुणभद्र, उत्तरपुराण, पर्व 76, श्लोक 35–50
7 आचार्य पुष्पदन्त, महापुराण, 21/7/7–8
8 आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, पर्व 38, 39, श्लोक 122, 29–30
9 रविषेण, पद्मपुराण, पर्व 14, श्लोक 271–273
10 जैन, पी.सी., जैन धर्म में पर्यावरण चेतना एवं संरक्षण, पृ. 9
11 आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, पर्व 1, श्लोक 6–18
12 वही, पर्व 39, श्लोक 29–30 ; जिनसेन, हरिवंशपुरण, सर्ग 18, श्लोक 48
13 पंचसंग्रह, 1/62, अराधनासार, 74
14 उत्तरध्ययनसूत्र, 29/68
15 आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, पर्व 3, श्लोक 39–40
16 आचार्य महाप्रज्ञ, ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, दी फेमिली एण्ड द नेशन, पृ. 2
17 आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, पर्व 39, श्लोक 143–149 ; जिनसेन, हरिवंशपुराण, सर्ग 9, श्लोक 35–42
18 आचार्य ज्ञानसागर, वीरोदय, सर्ग 18, गाथा 29
19 आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, पर्व 19, श्लोक 17 ; जिनसेन, हरिवंशपुराण, सर्ग 2, श्लोक 123
20 उपदेश सप्ततिका 3
21 भद्रबाहु संहिता, अध्याय 9, श्लोक 65